परीक्षा का दबाव और कारण

-चंदन

इस तरह की शिक्षा से तैयार व्यक्तिवादी एकांगी व्यक्ति क्या हासिल कर पा रहा है? अवसाद, अलगाव और आत्महत्या जैसे कदम। मुंबई में 2013 में 75 प्रतिशत अवसादग्रस्त लोग थे, जिसमें 6 वर्ष से 25 वर्ष तक के लोग थे। ये स्थिति देश की आर्थिक राजधानी मुंबई की है।

परीक्षाओं से कुछ माह पहले तक छात्रों से माता-पिता की बातचीत कुछ इस प्रकार होती है, ''कितनी तैयारी हो चुकी है?'', ''थोड़ा पढाई पर ध्यान दो, आजकल तो खेलना बन्द करो, (या जो कोई भी उसका शौक हो) छोड़ दे, एक-दो महीने की बात है'', ''अभी थोड़ा मेहनत कर लेगा/लेगी तो आगे जीवन सुधर जायेगा'' आदि-आदि। इसके अतिरिक्त बोर्ड परीक्षाओं वाले क्षात्रों को कुछ अन्य बातें भी सुननी होती है, ''इस साल बोर्ड है'', ''पिछली बार शर्मा जी के बच्चे के बोर्ड में 90 प्रतिशत थे'', ''ये पहली सीढी है, यहां अंक प्रतिशत अच्छा रहा तो आगे भी अच्छे मौके मिलेंगे'' और ऐसी ही तमाम बातें।

ऐसा नहीं है कि यह स्थिति घर की ही होती है। विद्यालयों के भी यही हाल होते हैं। शिक्षकों का कुल जोर परीक्षा परिणाम होता है। इसी को ध्यान में रखकर वे निर्देश देते हैं। जैसे-''पिछले सालों में ये-ये प्रश्न आये थे, इन्हें सही से तैयार कर लेना'', ''तूने कितनी तैयारी कर ली'', तेरे भैय्या/दीदी हैं, पढाने वाले अपनी तो कुछ तैयारी ही नहीं हुई'', ''यार नोट्स दे दे, फ़ोटो कॉपी करके दे दूंगा।'', परीक्षा तक रूक जा उसके बाद खेलने (अपने पसंदीदा कामों में) चलेंगे'' या ऐसी ही कुछ चिंता बातों में होती है।

उपरोक्त सारी चर्चाएं कम-ज्यादा या भिन्न रूपों में परीक्षा के समय तक रहती हैं। यह पूरा समय छात्रों व उनके शैक्षिक कार्यों से जुड़े लोगों के भी रिश्तों को सामान्य नहीं रहने देता। अक्सर ही इसमें परीक्षा के तनाव को कम करने या बढाने वाली चर्चाएं होती हैं। ये चर्चाएं निर्विवाद रूप से गरीबों के सरकारी विद्यालयों और मध्यम वर्गीय के कान्वेंट स्कूलों के छात्रों के बीच होती हैं। हां! ये तनाव शासक वर्गीय स्कूलों के छात्रों में नहीं होता। यह इसलिए कहा जा सकता है क्योंकि कभी किसी पूंजीपति वर्ग के व्यक्ति के बच्चे को शिक्षा के कारण तनाव या आत्महत्या की घटना नहीं हुई। वह सामाजिक चुनौतियों से आज़ाद होता है, उसे पढकर कोई नौकरी नहीं ढूंढनी होती है, बल्कि अक्सर ही उसका भविष्य तय होता है।

छात्र मूल्यांकन की इस पूंजीवादी पद्धति में दोहरा पिसता है। जहां एक तरफ़ वह व्यहार से कटे हुए विज्ञान को जबरदस्ती रटने को मजबूर है, वहीं दूसरी तरफ़ प्रतियोगिता के इस दौर में दूसरे से आगे भी निकलना होता है। व्यवहार से कटे इन ज्ञान को किसी हद तक प्रयोगशालाओं के अंदर तक ले जाया जाता है। जहां छात्र को वर्षों पुराने रासायनिक, भौतिक या जैव विज्ञानी प्रयोगों को रटना होता है कि इन-इन रसायनों की क्रिया से ये मिलेगा; और उससे वो। जहां तक आधुनिक वैज्ञानिक खोजों और उसके अनुसार पाठ्यक्रम की बात है तो वह केवल सूचनार्थ पाठ्यक्रम में शामिल हो जाता है। जिसे; उसे वास्तविक अर्थों में समझना मुश्किल सा हो जाता है।

शिक्षा की इस पद्धति में मूल्यांकन का आधार क्या है? मूल्यांकन का आधार है; कुछ घंटों में साल भर याद/रटे हुए से; पन्ने भर देना। हमें दी जाने वाली शिक्षा का पाठ्यक्रम और मूल्यांकन का निर्धारण कौन करता है? स्पष्ट ही है कि सरकार के दिशा-निर्देशों पर बोर्ड करते हैं। अब सोचने वाली बात यह है कि व्यवहार यानि श्रम से जुड़े बिना तैयार होने वाले छात्र की स्थिति क्या होगी और उसकी जरूरत किसे है? श्रम ने शिक्षा की आवश्यकता को पैदा किया। यदि किसी भी विज्ञान को उसके ऐतिहासिक क्रम में बताया जाय तो उसकी द्वन्द्वात्मक गति से भी छात्र को परिचित करवाया जायेगा। जैसे मोटे तौर पर अणु से आगे परमाणु और उससे आगे इलैक्ट्रॉन, प्रोटॉन और उससे आगे क्वॉर्क की खोज हर पिछले ज्ञान को और गहराई तक ले जाता है और नई सीमाएं खोलता है, ऐसी शिक्षा प्राप्त छात्र समाज की सीमाओं को आगे बढाकर नये समाज निर्माण के सिद्धांत तक भी जा सकता है। इसीलिये उन्हें आज ही काठ का पुतला बनने की शिक्षा दी जाती है। ये काठ के पुतले न सिर्फ़ सरकार के काम के हैं बल्कि पूंजीपतियों के लिये भी हितकारी हैं। बल्कि पूंजीपति वर्ग के शोषण को झेलने का इन्हें प्रशिक्षण दिया जाता है। असल में पूंजीपतियों की सेवा करते हुए वह सरकार के सामने भी मुंह बाए खड़े रहते हैं।

इस अव्यवहारिक शिक्षा की मूल्यांकन पद्धति भी शासकों के हितों का ख्याल रखती है। कक्षा में पढने वालों का व्यक्तिगत मूल्यांकन होता है। शिक्षा सामूहिक परंतु परीक्षा व्यक्तिगत। इससे छात्रों का ज्ञान एक निजी क्षमता-योग्यता की वस्तु बन जाती है। इस तरह एक कक्षा को नहीं बल्कि हर छात्र में एक कक्षा को शिक्षा दी जाती है और उससे मूल्यांकन होता है। जिसमें इस तरह चर्चा होती है कि फलां छात्र अच्छा है या बुरा है। इससे छात्रों के साझा प्रयासों व क्षमताओं का विकास नहीं हो सकता। वे निरंतर दूसरे से संघर्षरत प्रतियोगी होते हैं, जिसे किसी भी तरह आगे निकलना है।

भला ऐसे एकांगी सोच के व्यक्ति से समाज का क्या लाभ? ऐसे व्यक्तिवादी छात्र की पूंजीवादी शासकों को जरूरत है। जिससे वे स्वयंभू श्रेष्ठमन छात्र से लेकर हीन भाव छात्र तक की पूरी पीढ़ी तैयार करता है। जहां की पूरी की पूरी भीड़ व्यक्तिगत है। समाज को ऐसी भीड़ नहीं चाहिये। उसकी जरूरत तो एक संगठित जुलूस की है, एक संगठित सेना की है; न कि एक स्वयंभू नायक की। समाज को सामाजिक जीव चाहिए न कि एकांगी। समाज को एक छात्र चाहिये जो खुद को समाज का हिस्सा माने न कि समाज को अपना। सामूहिक शिक्षा और मूल्यांकन निजी; की ये पद्धति पूंजीपतियों की सेवक है, आम मेहनतकश छात्रों की नहीं।

इसीलिये स्वाभाविक ही एक परायी चीज़ के प्रति छात्र असहज होंगे ही, जैसे-एक पराये वायरस से शरीर बिमार हो जाता है या एक पराये से परिजन असहज हो जाते हैं। एक परायी (पूंजीपति वर्ग की सेवा करने वाली) मूल्यांकन पद्धति से मेहनतकशों के छात्र असहज हो जाते हैं। तनाव महसूस करते है; बीमार हो जाते हैं और कुछ तो हार कर मर भी जाते हैं। उन्हें एक ऐसी मूल्यांकन पद्धति चाहिये जो उन्हें बता सके कि तुम सब समाज के लिये किसी न किसी रूप में उपयोगी हो। इसलिये तुम सबको एक जैसी परीक्षा की जरूरत नहीं।

इसके अलावा शिक्षा की मूल्यांकन पद्धति में एक और द्वंद है; शिक्षा तो वार्षिक, मूल्यांकन (साल या 2-3 माह में) 3 घंटे में। यह पहले वाले द्वंद की आवश्यकता है जिसमें एकांगी व्यक्ति चाहिये। इसके अलावा ऐसे में वैज्ञानिक बोध वाले छात्रों का जन्म भी न हो सकेगा। इससे एक छात्र के लिये एक सिद्धांत के विकास को समझने की तुलना में चुने हुए सूत्रों को याद करना आवश्यक हो जाता है। उस पर भी उसने कुछ कम किया और अंक कम आए तो मूर्ख अन्यथा होशियार। यह तरीका इस लिहाज से भी गलत है कि कुछ प्रश्नों के उत्तर देने से छात्र का समग्र मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। इससे छात्र की मानसिक क्षमता (याद/रटने) का तो फ़िर भी अंदाज़ा लग सकता है कि उन चुनिंदा प्रश्नों में से याद प्रश्न का उत्तर कितना सही देता है। इस तरह आधा-अधूरा मूल्यांकन करने की प्रक्रिया पूरी होती है।

शासकों को मूल्यांकन में कुछ घंटों की लिखित परीक्षा रखने का मकसद मानसिक श्रम को उच्च व शारीरिक श्रम को निम्न बताना होता है। यह मानसिक श्रम भी व्यवहार से कटा हुआ व एकांगी है। एक एकांगी व श्रम के प्रति हीन भाव रखने वाला व्यक्ति शासकों का सबसे प्रिय होगा। एक पूंजीपति भी एकांगी व श्रम के प्रति हीन भाव रखता है। उसे अपनी जैसी सोच वाले लोग ही चाहिये।

यह दीगर बात है कि मेहनतकशों व मध्यमवर्गीय परिवारों के बच्चों में से अधिकांश इससे बाहर हो जाते हैं। अपनी इस नीयति से वे डरते हैं, जिसमें उन्हें दीक्षित तो परोपजीवी के रूप में किया जाता है, जबकि बनना उन्हें श्रमजीवी पड़ता है। इससे वह खुद अपने प्रति हेय हो जाते हैं। इस तरह की शिक्षा से तैयार व्यक्तिवादी एकांगी व्यक्ति क्या हासिल कर पा रहा है? अवसाद, अलगाव और आत्महत्या जैसे कदम। मुंबई में 2013 में 75 प्रतिशत अवसादग्रस्त लोग थे, जिसमें 6 वर्ष से 25 वर्ष तक के लोग थे। ये स्थिति देश की आर्थिक राजधानी मुंबई की है। (स्रोत: टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 20 जनवरी 2013, इंटरनेट वर्जन)

रोजगार की बात की जाये तो अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई.एल.ओ.) की 2015 की रिपोर्ट बताती है कि इस वर्ष भारत की बेरोजगारी दर 3.8 प्रतिशत रहेगी। शेष रोजगार प्राप्त लोगों की स्थिति यह है कि 2004 से 2010 तक केवल 11 लाख लोगों का रोजगार बढा जबकि 2009 से 2012 तक 139 लाख लोगों तक रोज़गार फ़ैला। 2009 से 2012 के बीच बढ़े रोजग़ार अनियमित आय वाले रोजगार अधिक हैं। इसका अंदाज़ा इस बात से भी लग सकता है कि 2011-12 में कुल रोज़ग़ार कर रहे लोग़ों में से केवल 21.2 प्रतिशत लोग़ों को ही नियमित वेतन मिलता था (स्रोत: टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 24 मार्च, 2015, इंटरनेट वर्जन)

एक अवसादग्रस्त अकेला नौजवान शासकों के इस शिक्षा-रोजग़ार के मकड़ज़ाल में उलझा रहता है। उपरोक्त आंकड़ों से साफ़ ही है कि मेहनतकशों के लिये यह खतरनाक स्थिति है। जहां कि वह प्राप्त शिक्षा से अलगाव में चला जाता है और सामूहिकता के बोध से काफ़ी दूर होता है। यह स्थिति जहां परीक्षा छोड़ने (उत्तराखंड बोर्ड परीक्षा 2015 में 3148 छात्रों ने हिंदी की परीक्षा छोड़ी) से लेकर आत्महत्या तक जाती है। देश में 2012 में आत्महत्या करने वाले कुल लोगों में 34 प्रतिशत की उम्र 15-29 वर्ष है। आत्महत्या करने वालों में 80 प्रतिशत शिक्षित हैं जो कि देश की साक्षरता दर 74 प्रतिशत से अधिक है। यानि आत्महत्या करने वालों में शिक्षित अधिक हैं।

पूंजीपति वर्ग की सेवा करने वाली इस शिक्षा के बजाय मेहनतकशों को सामूहिकता पर केन्द्रित शिक्षा की आवश्यकता है। जो छात्रों में योग्यता पैदा करे और कहे कि हमें हर काम करने लायक व्यक्ति की जरूरत है। आपके लिये कुछ काम तो हमारे पास है ही। जो निरंतर आपका मूल्यांकन करे और योग्यता विकास में मदद करे। ऐसी शिक्षा समाजवाद ही दे सकता है जो कि मानव मूल्यों को और उच्च धरातल पर ले जाये न कि पूंजीवादी व्यवस्था जो कि मुनाफ़े के मूल्य को ही ऊंचा करना चाहता है।

परीक्षा के बाद बच्चे और ऑपरेशन के बाद डॉक्टर

एक ही बात कहते हैं,

''कुछ कह नहीं सकते, बस दुआ करें।''

तुर्की-ब-तुर्की / ''भारत ने किसी को साम्प्रदायिकता नहीं दी''-मोदी

''हमारा कहना है-

- मोदी जी आप ठीक फरमा रहे हैं। विशेषकर आपके राज में देश के भीतर ही साम्प्रदायिकता की खपत इतनी बढ गयी है कि किसी अन्य देश को देने के लिये बचती ही नहीं। हालांकि आपने अपनी ओर से नेपाल तक को साम्प्रदायिकता नहीं तो क्षेत्रीयता तो निर्यात कर ही दी। पीढियों से शान्तिपूर्वक रह रहे वहां के मधेसियों और मूल निवासियों के बीच तनाव चर्म पर पहुंचा दिया है।
- आपका मेक-इन-इंडिया कार्यक्रम वैसे तो फ़्लॉप जा रहा है। लेकिन साम्रप्रदायिकता का रिकॉर्डतोड़ उत्पादन देखने को मिला है। हिन्दू साम्प्रदायिकता की तर्ज पर अब मुस्लिम साम्प्रदायिकता और सिख साम्प्रदायिकता भी सही खाद पानी पा कर प्रवाण चढ रही हैं। साम्प्रदायिक तनावों और झड़पों में आपके डेढ वर्षीय शासन में ही रिकॉर्डतोड़ वृद्धि हो चुकी है। अभी बंगाल और आसाम के चुनाव आने जा रहे हैं। जाहिर है साम्प्रदायिकता का उत्पादन और खपत दोनों ही और तीव्रता से बढेंगे।
- देश में साम्प्रदायिकता का सबसे मुखर चेहरा तो आप स्वयं ही रहे हैं। सन् 2002 के गुजरात पोग्राम के बाद सारे विश्व में आपको एक घोर साम्प्रदायिकता की जीती जागती छवि के रूप में देखा जाने लगा था। अमेरिका ने तो आपको अपनी धरती पर कदम रखने से भी प्रतिबंधित कर रखा था। ऐसे में आपकी हर माह होने वाली विदेश यात्रायें इतना तो सुनिश्चित कर ही रही हैं कि दुनिया आप जैसे साम्प्रदायिक प्रतीक को भूल ना पाये। यदि आप दोबारा प्रधानमंत्री चुने गये तो निश्चित रूप से साम्प्रदायिकता का निर्यात करने वाले देशों में भारत का नाम भी पहुंच चुका होगा।
- वैसे आपके नेतृत्व में मोदी जी भारत ने विश्व को दिया क्या है? बीफ़, गीता और योग! ये तीनों आइटम काफ़ी अर्से से भारत से निर्यात होते रहे हैं। आपने बस इनकी रीपैकेजिंग जरूर की है। आपकी असली उपलब्धि-बीफ़ निर्यात के क्षेत्र में है। इसने आपके घोर महाभक्तों को भी चमत्कृत कर दिया है। गौ माता के नाम पर साम्प्रदायिकता बढाने वालों को आपसे शिकायत भी हो सकती है-यानी कि भाजपाई और संघियों को। फ़िर भी आप 'साहसपूर्वक' डटे हुए हैं। आखिर बीफ़ और साम्प्रदायिकता का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध जो है।
- क्या हम आपको एक सलाह दे सकते हैं? पाकिस्तान से समझौते का ख्याल छोड़िये। आपका सबसे अच्छा समझौता आईएसआईएस से हो सकता है। दोनों के पास साम्प्रदायिकता का एक जैसा उत्पादन और खपत हैं। दरअसल आप दोनों के बीच एक वार्षिक प्रतियोगिता शुरू की जा सकती है कि उत्पादन-खपत का सिलसिला किसका आंकड़ा अधिक प्रभावी है। आज बेशक आईएसआईएस आगे नजर आता हो पर आप भी ज्यादा दिन पिछड़ने वाले नहीं। लेकिन तब तक भारत की जनता आपको ढोने वाली नहीं।

मालदा में गोधरा सूंघता : बंगाल में गुजरात दोहराने की तैयारी ?